How to Cite:
(Oct 2020). भारतीय राष्ट्रवाद का विकास : 1857 से 1947 तक
***International Journal of Economic Perspectives*,14(1), 345-352**
Retrieved from https://ijeponline.com/index.php/journal/article

भारतीय राष्ट्रवाद का विकास : 1857 से 1947 तक

भावना
सहायक आचार्य (इतिहास)
राजकीय नेहरू मेमोरियल महाविद्यालय, हनुमानगढ़ (राज.)

सारांश

यह शोध पत्र "भारतीय राष्ट्रवाद का विकास : 1857 से 1947 तक" विषय पर केंद्रित है, जिसमें राष्ट्रवाद की अवधारणा के ऐतिहासिक विकास का विश्लेषण किया गया है। 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से प्रारंभ होकर यह अध्ययन भारतीय राष्ट्रीय चेतना के क्रमिक विस्तार को रेखांकित करता है। प्रारंभिक राष्ट्रवाद, जो मुख्यतः शिक्षित मध्यम वर्ग तक सीमित था, धीरे–धीरे उग्र राष्ट्रवाद और स्वदेशी आंदोलन के माध्यम से व्यापक रूप ग्रहण करता है। इसके पश्चात महात्मा गांधी के नेतृत्व में राष्ट्रवाद एक जन–आंदोलन के रूप में विकसित होता है, जिसमें विभिन्न वर्गों–किसान, मजदूर, महिलाएँ और युवा–की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित होती है। शोध में यह भी स्पष्ट किया गया है कि राष्ट्रवाद के साथ–साथ सांप्रदायिकता का उदय भी हुआ, जिसने अंततः भारत के विभाजन का मार्ग प्रशस्त किया।

अंततः यह अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि भारतीय राष्ट्रवाद एक बहुआयामी, समावेशी एवं गतिशील प्रक्रिया थी जिसने न केवल स्वतंत्रता प्राप्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, बल्कि आधुनिक भारत की नींव भी रखी।

मुख्य शब्दः भारतीय राष्ट्रवाद, 1857 का विद्रोह, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, स्वदेशी आंदोलन, गांधी युग, स्वतंत्रता संग्राम, सांप्रदायिकता, भारत विभाजन, राष्ट्रीय चेतना, जन–आंदोलन

प्रस्तावना

भारतीय राष्ट्रवाद का विकास आधुनिक भारत के इतिहास की एक अत्यंत महत्वपूर्ण और जटिल प्रक्रिया रही है जिसने न केवल देश को राजनीतिक स्वतंत्रता दिलाने में निर्णायक भूमिका निभाई बल्कि भारतीय समाज की चेतना, एकता और आत्मबोध को भी नई दिशा प्रदान की। 'राष्ट्रवाद' शब्द का सामान्य अर्थ एक ऐसी सामूहिक भावना से है जिसमें किसी देश के लोग अपने साझा इतिहास, संस्कृति, भाषा, परंपराओं और राजनीतिक आकांक्षाओं के आधार पर स्वयं को एक राष्ट्र के रूप में पहचानते हैं। भारतीय संदर्भ में राष्ट्रवाद केवल राजनीतिक स्वतंत्रता की मांग तक सीमित नहीं था बल्कि यह सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक पुनर्जागरण की व्यापक प्रक्रिया से भी जुड़ा हुआ था।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक भारत विभिन्न रियासतों, जातीय समूहों और सांस्कृतिक विविधताओं में विभाजित था, जहाँ एकीकृत राष्ट्रीय चेतना का अभाव था। हालांकि, ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन की नीतियों–जैसे आर्थिक शोषण, प्रशासनिक केंद्रीकरण, सामाजिक हस्तक्षेप और सांस्कृतिक प्रभुत्व ने अनजाने में भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों को एक साझा अनुभव के सूत्र में बांधना शुरू किया। इसी संदर्भ में 1857 का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ के रूप में उभरता है। यह विद्रोह भले ही संगठित राष्ट्रीय आंदोलन के रूप में पूर्णतः सफल नहीं हुआ किंतु इसने भारतीय जनता के भीतर विदेशी शासन के विरुद्ध प्रतिरोध की भावना को जन्म दिया और राष्ट्रीय चेतना के बीज बोए।

1857 के पश्चात् भारतीय राष्ट्रवाद का विकास एक संगठित और क्रमिक रूप में सामने आता है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना ने राष्ट्रवादी आंदोलन को एक वैचारिक और संस्थागत आधार प्रदान किया। प्रारंभिक दौर में यह आंदोलन शिक्षित मध्यम वर्ग तक सीमित रहा, जहाँ उदारवादी नेताओं ने संवैधानिक सुधारों और प्रशासन में भारतीयों की भागीदारी की मांग की। हालांकि, समय के साथ राष्ट्रवाद का स्वरूप अधिक उग्र और व्यापक होता गया। बंग–भंग (1905) के विरोध में चले स्वदेशी आंदोलन ने राष्ट्रवाद को जन–आंदोलन का रूप देने की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया जिससे भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों की भागीदारी बढ़ी।

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में भारतीय राष्ट्रवाद ने एक नई दिशा तब प्राप्त की, जब महात्मा गांधी ने राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व संभाला। गांधीजी के नेतृत्व में राष्ट्रवाद ने अहिंसा, सत्याग्रह और जनसहभागिता के सिद्धांतों के आधार पर एक व्यापक जनांदोलन का स्वरूप ग्रहण किया। असहयोग

© 2020 by The Author(s). ISSN: 1307-1637 International journal of economic perspectives is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.
Submitted: 27 Aug 2020, Revised: 09 Sep 2020, Accepted: 12 Oct 2020, Published; 30 Dec 2020

How to Cite:
(Oct 2020). भारतीय राष्ट्रवाद का विकास : 1857 से 1947 तक
***International Journal of Economic Perspectives*,14(1), 345-352**
Retrieved from https://ijeponline.com/index.php/journal/article
आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन और भारत छोड़ो आंदोलन जैसे प्रयासों ने राष्ट्रवाद को गाँव–गाँव तक पहुँचाया और इसे जनमानस का आंदोलन बना दिया। इस काल में राष्ट्रवाद केवल राजनीतिक स्वतंत्रता का संघर्ष नहीं रहा बल्कि यह सामाजिक सुधार, आत्मनिर्भरता (स्वदेशी) और नैतिक पुनर्जागरण का भी माध्यम बन गया।

इसके साथ ही भारतीय राष्ट्रवाद की प्रक्रिया पूरी तरह एकरूप नहीं थी बल्कि इसमें विभिन्न वैचारिक धाराएँ और प्रवृत्तियाँ भी सक्रिय थीं। क्रांतिकारी आंदोलन, समाजवादी विचारधारा, किसान और मजदूर आंदोलनों ने राष्ट्रवाद को बहुआयामी स्वरूप प्रदान किया। वहीं दूसरी ओर, सांप्रदायिकता का उदय भी राष्ट्रवादी आंदोलन के साथ–साथ विकसित हुआ, जिसने हिंदू–मुस्लिम संबंधों को प्रभावित किया और अंततः 1947 में भारत के विभाजन का कारण बना।

इस प्रकार 1857 से 1947 तक भारतीय राष्ट्रवाद का विकास एक निरंतर, गतिशील और बहुआयामी प्रक्रिया के रूप में देखा जा सकता है, जिसमें प्रारंभिक चेतना से लेकर संगठित आंदोलन, और अंततः व्यापक जनभागीदारी तक का क्रमिक विस्तार स्पष्ट होता है। यह प्रक्रिया न केवल स्वतंत्रता प्राप्ति तक सीमित रही बल्कि इसने आधुनिक भारत के लोकतांत्रिक, धर्मनिरपेक्ष और समावेशी स्वरूप की नींव भी रखी। अतः भारतीय राष्ट्रवाद का अध्ययन केवल अतीत की घटनाओं का विश्लेषण नहीं, बल्कि वर्तमान भारतीय समाज और उसकी संरचना को समझने का एक महत्वपूर्ण माध्यम भी है।

1857 का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम : राष्ट्रवाद की प्रारंभिक चेतना

1857 का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम भारतीय इतिहास की एक ऐसी निर्णायक घटना है जिसने भारत में राष्ट्रवाद की प्रारंभिक चेतना को जन्म दिया और औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध व्यापक प्रतिरोध की नींव रखी। यद्यपि इससे पूर्व भी विभिन्न क्षेत्रों में अंग्रेजों के विरुद्ध असंतोष और विद्रोह देखने को मिलते हैं, परंतु 1857 का विद्रोह पहली बार इतना व्यापक और संगठित रूप में सामने आया जिसमें सैनिकों, किसानों, जमींदारों, शासकों और आम जनता ने मिलकर भाग लिया। इसीलिए इसे भारतीय राष्ट्रवाद के विकास का प्रारंभिक बिंदु माना जाता है। यह विद्रोह केवल सैन्य असंतोष तक सीमित नहीं था, बल्कि इसके पीछे गहरे राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक कारण विद्यमान थे, जिन्होंने भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों को एक साझा उद्देश्य के तहत विदेशी शासन के विरोध में एकजुट किया।

राजनीतिक स्तर पर अंग्रेजों की विस्तारवादी नीति, विशेषकर 'लैप्स का सिद्धांत' (Doctrine of Lapse) और भारतीय रियासतों के विलय की नीति ने भारतीय शासकों में असंतोष उत्पन्न किया। आर्थिक दृष्टि से अंग्रेजों की शोषणकारी नीतियों– जैसे भारी कर व्यवस्था, पारंपरिक उद्योगों का पतन और किसानों का बढ़ता कर्ज ने जनता को अत्यंत परेशान कर दिया था। सामाजिक और धार्मिक हस्तक्षेपों, जैसे सती प्रथा का उन्मूलन, विधवा विवाह को वैधता और ईसाई मिशनरियों की गतिविधियों को भी कई भारतीयों ने अपनी परंपराओं पर आघात के रूप में देखा। इन सभी कारणों ने मिलकर असंतोष की एक व्यापक पृष्ठभूमि तैयार की जिसका विस्फोट 1857 में हुआ।

इस विद्रोह की शुरुआत मेरठ से हुई जहाँ सैनिकों ने अंग्रेजी सेना के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और तत्पश्चात यह आंदोलन तेजी से दिल्ली, कानपुर, झाँसी, लखनऊ और अन्य क्षेत्रों में फैल गया। बहादुर शाह ज़फ़र को प्रतीकात्मक रूप से भारत का सम्राट घोषित किया गया जिससे इस आंदोलन को एक राजनीतिक और राष्ट्रीय स्वरूप मिला। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, तांत्या टोपे, नाना साहेब और बेगम हज़रत महल जैसे नेताओं ने इस संघर्ष में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन नेताओं और जनता की संयुक्त भागीदारी ने यह स्पष्ट किया कि यह केवल सैनिक विद्रोह नहीं, बल्कि व्यापक असंतोष का परिणाम था।

यद्यपि 1857 का विद्रोह अंततः असफल रहा परंतु इसकी ऐतिहासिक महत्ता अत्यंत गहन है। इसने भारतीयों के मन में यह भावना उत्पन्न की कि वे विदेशी शासन के विरुद्ध एकजुट होकर संघर्ष कर सकते हैं। इस विद्रोह ने पहली बार भारतीयों में 'हम' की सामूहिक चेतना को जन्म दिया, जो राष्ट्रवाद की मूल भावना है। हालांकि इस समय राष्ट्रवाद पूरी तरह विकसित नहीं था और इसमें क्षेत्रीयता, जातीयता तथा नेतृत्व की कमी जैसी सीमाएँ थीं, फिर भी यह विद्रोह भारतीय राष्ट्रवाद के बीजारोपण का कार्य करता है।

इसके अतिरिक्त, 1857 के बाद अंग्रेजी शासन ने भी अपनी नीतियों में परिवर्तन किया। ब्रिटिश सरकार ने ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन समाप्त कर भारत को सीधे अपने नियंत्रण में ले लिया और प्रशासनिक सुधारों के माध्यम से अपने शासन को मजबूत करने का प्रयास किया। साथ ही, उन्होंने

© 2020 by The Author(s). ISSN: 1307-1637 International journal of economic perspectives is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.
Submitted: 27 Aug 2020, Revised: 09 Sep 2020, Accepted: 12 Oct 2020, Published; 30 Dec 2020

How to Cite:
(Oct 2020). भारतीय राष्ट्रवाद का विकास : 1857 से 1947 तक
***International Journal of Economic Perspectives*,14(1), 345-352**
Retrieved from https://ijeponline.com/index.php/journal/article

'फूट डालो और राज करो' की नीति अपनाई, जिससे भारतीय समाज में विभाजन बढ़ा। इसके बावजूद, 1857 की स्मृति भारतीयों के लिए प्रेरणा स्रोत बनी रही और आगे चलकर संगठित राष्ट्रवादी आंदोलन के लिए आधार तैयार किया।

अतः यह कहा जा सकता है कि 1857 का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम भारतीय राष्ट्रवाद की प्रारंभिक चेतना का प्रतीक था। इसने भारतीयों को पहली बार एक साझा लक्ष्य के लिए संगठित किया, विदेशी शासन के प्रति प्रतिरोध की भावना को मजबूत किया और आने वाले समय में स्वतंत्रता संग्राम के लिए वैचारिक तथा भावनात्मक आधार प्रदान किया। यही कारण है कि 1857 को भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक मील का पत्थर माना जाता है।

प्रारंभिक राष्ट्रवाद (1885–1905)

प्रारंभिक राष्ट्रवाद का काल (1885–1905) भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में एक महत्वपूर्ण चरण के रूप में जाना जाता है, जिसमें राष्ट्रवादी चेतना को संगठित, वैचारिक और संस्थागत आधार प्राप्त हुआ। इस काल की सबसे प्रमुख घटना भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना थी जिसने भारतीयों को एक साझा मंच प्रदान किया, जहाँ वे अपनी समस्याओं, आकांक्षाओं और राजनीतिक अधिकारों के लिए संगठित रूप से आवाज उठा सके। यह वह समय था जब भारतीय राष्ट्रवाद अभी अपनी प्रारंभिक अवस्था में था और मुख्यतः शिक्षित मध्यम वर्ग तक सीमित था किन्तु इसने भविष्य के व्यापक राष्ट्रीय आंदोलन की नींव रखी।

इस काल के राष्ट्रवादी नेताओं को सामान्यतः 'उदारवादी' (Moderates) कहा जाता है जिनमें दादाभाई नौरोजी, गोपाल कृष्ण गोखले, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और फिरोजशाह मेहता जैसे प्रमुख नाम शामिल हैं। इन नेताओं का विश्वास संवैधानिक उपायों, शांतिपूर्ण तरीकों और ब्रिटिश शासन की न्यायप्रियता में था। वे याचिकाओं, प्रार्थना–पत्रों, प्रतिनिधिमंडलों और वाद–विवाद के माध्यम से अपने अधिकारों की मांग करते थे। उनका उद्देश्य तत्काल स्वतंत्रता प्राप्त करना नहीं था बल्कि प्रशासन में भारतीयों की भागीदारी बढ़ाना, आर्थिक शोषण को कम करना और धीरे–धीरे स्वशासन की दिशा में आगे बढ़ना था।

प्रारंभिक राष्ट्रवाद की एक महत्वपूर्ण विशेषता इसका बौद्धिक और वैचारिक स्वरूप था। इस काल के नेताओं ने ब्रिटिश शासन की आर्थिक नीतियों की तीव्र आलोचना की। दादाभाई नौरोजी द्वारा प्रतिपादित 'धन–निकास सिद्धांत' (Drain Theory) ने यह स्पष्ट किया कि किस प्रकार भारत की संपत्ति ब्रिटेन में स्थानांतरित हो रही थी जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था कमजोर होती जा रही थी। इसी प्रकार, आर. सी. दत्त और अन्य विचारकों ने भी आर्थिक शोषण के विभिन्न पहलुओं को उजागर किया। इन प्रयासों ने भारतीयों में आर्थिक राष्ट्रवाद की भावना को विकसित किया और उन्हें अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाया।

हालाँकि इस काल में राष्ट्रवाद का स्वरूप सीमित था। यह आंदोलन मुख्यतः शहरी, शिक्षित और अभिजात वर्ग तक ही सीमित रहा जबकि ग्रामीण जनता, किसान, मजदूर और महिलाएँ इसमें व्यापक रूप से शामिल नहीं हो पाए। इसके अतिरिक्त, उदारवादी नेताओं की नीतियाँ अपेक्षाकृत धीमी और समझौतावादी मानी जाती थीं जिसके कारण युवा और उग्र राष्ट्रवादी वर्ग में असंतोष बढ़ने लगा। यही असंतोष आगे चलकर उग्र राष्ट्रवाद के रूप में विकसित हुआ।

फिर भी, प्रारंभिक राष्ट्रवाद की उपलब्धियों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। इस काल ने भारतीयों को राजनीतिक रूप से शिक्षित किया, राष्ट्रीय एकता की भावना को विकसित किया और ब्रिटिश शासन की नीतियों की आलोचना के लिए एक सशक्त मंच प्रदान किया। इसने यह भी स्थापित किया कि भारतीय अपनी समस्याओं को संगठित रूप से प्रस्तुत कर सकते हैं और राष्ट्रीय स्तर पर एकजुट हो सकते हैं।

अतः 1885 से 1905 तक का प्रारंभिक राष्ट्रवाद भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की आधारशिला के रूप में कार्य करता है। इसने राष्ट्रवादी आंदोलन को दिशा, स्वरूप और उद्देश्य प्रदान किया, जिससे आगे चलकर यह आंदोलन अधिक व्यापक, उग्र और जन–आधारित बन सका।

उग्र राष्ट्रवाद एवं स्वदेशी आंदोलन (1905–1919)

उग्र राष्ट्रवाद एवं स्वदेशी आंदोलन का काल (1905–1919) भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में एक महत्वपूर्ण और निर्णायक चरण के रूप में देखा जाता है जिसमें राष्ट्रवाद का स्वरूप

© 2020 by The Author(s). ISSN: 1307-1637 International journal of economic perspectives is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.
Submitted: 27 Aug 2020, Revised: 09 Sep 2020, Accepted: 12 Oct 2020, Published; 30 Dec 2020

How to Cite:
(Oct 2020). भारतीय राष्ट्रवाद का विकास : 1857 से 1947 तक
***International Journal of Economic Perspectives*,*14*(1), 345-352**
Retrieved from https://ijeponline.com/index.php/journal/article
अधिक तीव्र, संघर्षशील और जन–आधारित हो गया। इस काल की शुरुआत 1905 में बंगाल विभाजन से होती है जिसे ब्रिटिश सरकार ने प्रशासनिक सुविधा के नाम पर लागू किया किंतु भारतीयों ने इसे 'फूट डालो और राज करो' की नीति के रूप में देखा। इस निर्णय ने भारतीय समाज में व्यापक असंतोष उत्पन्न किया और राष्ट्रवादी आंदोलन को एक नई दिशा प्रदान की। बंग–भंग के विरोध में प्रारंभ हुआ स्वदेशी आंदोलन शीघ्र ही पूरे देश में फैल गया और इसने राष्ट्रवाद को एक जन–आंदोलन का स्वरूप प्रदान किया।

इस काल के राष्ट्रवादी नेताओं को 'उग्रवादी' (Extremists) कहा जाता है, जिनमें प्रमुख रूप से बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय और बिपिन चंद्र पाल शामिल थे, जिन्हें सामूहिक रूप से 'लाल–बाल–पाल' के नाम से जाना जाता है। इन नेताओं का मानना था कि केवल प्रार्थना–पत्रों और शांतिपूर्ण उपायों से स्वतंत्रता प्राप्त नहीं की जा सकती बल्कि इसके लिए सक्रिय प्रतिरोध, जनसंगठन और आत्मनिर्भरता आवश्यक है। उन्होंने 'स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है' जैसे नारों के माध्यम से जनता में राष्ट्रीय भावना को जागृत किया और संघर्ष की भावना को प्रबल किया।

इस काल की प्रमुख विशेषता स्वदेशी आंदोलन था, जिसके अंतर्गत विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार और स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग को प्रोत्साहित किया गया। लोगों ने विदेशी कपड़ों की होली जलाई, स्वदेशी उद्योगों को बढ़ावा दिया और राष्ट्रीय शिक्षा संस्थानों की स्थापना की। इस आंदोलन ने आर्थिक राष्ट्रवाद को सशक्त किया और भारतीयों को आत्मनिर्भर बनने की प्रेरणा दी। इसके साथ ही, इस काल में राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन भी उभरा, जिसका उद्देश्य ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली के स्थान पर भारतीय मूल्यों और आवश्यकताओं पर आधारित शिक्षा प्रदान करना था।

उग्र राष्ट्रवाद के साथ–साथ इस काल में क्रांतिकारी गतिविधियों का भी विकास हुआ। अनेक गुप्त संगठनों और युवाओं ने सशस्त्र संघर्ष का मार्ग अपनाया, जैसे अनुशीलन समिति और युगांतर समूह। इन क्रांतिकारियों का उद्देश्य अंग्रेजों के विरुद्ध प्रत्यक्ष कार्रवाई करना था, जिससे ब्रिटिश शासन को चुनौती दी जा सके। हालांकि इन गतिविधियों का प्रभाव सीमित था, फिर भी इन्होंने राष्ट्रवाद की भावना को उग्र और प्रेरणादायक रूप प्रदान किया।

इस काल में राष्ट्रवाद का स्वरूप अधिक व्यापक और जनोन्मुखी हो गया। जहाँ प्रारंभिक राष्ट्रवाद शिक्षित वर्ग तक सीमित था, वहीं उग्र राष्ट्रवाद ने विद्यार्थियों, व्यापारियों, किसानों और आम जनता को भी आंदोलन से जोड़ा। यह परिवर्तन भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण था क्योंकि इससे राष्ट्रवाद एक व्यापक सामाजिक आंदोलन के रूप में विकसित हुआ।

हालाँकि उग्र राष्ट्रवाद की कुछ सीमाएँ भी थीं। नेताओं के बीच मतभेद, संगठनात्मक कमजोरियाँ और ब्रिटिश सरकार की कठोर दमनात्मक नीतियाँ इस आंदोलन की गति को प्रभावित करती रहीं। 1907 के सूरत अधिवेशन में उदारवादियों और उग्रवादियों के बीच विभाजन ने आंदोलन को अस्थायी रूप से कमजोर किया। इसके बावजूद, इस काल ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को एक नई ऊर्जा, दिशा और संघर्षशीलता प्रदान की।

अतः 1905 से 1919 तक का उग्र राष्ट्रवाद एवं स्वदेशी आंदोलन भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में एक महत्वपूर्ण मोड़ सिद्ध हुआ। इसने राष्ट्रवाद को अधिक सक्रिय, आत्मनिर्भर और जन–आधारित बनाया तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए संघर्ष की भावना को सुदृढ़ किया। यह काल आगे आने वाले गांधी युग के जनांदोलनों के लिए एक मजबूत आधार तैयार करता है।

गांधी युग में राष्ट्रवाद (1919–1947)

गांधी युग (1919–1947) भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास का वह कालखंड है जिसमें राष्ट्रीय आंदोलन ने अपने चरम और सर्वाधिक व्यापक स्वरूप को प्राप्त किया। इस दौर में राष्ट्रवाद केवल शिक्षित वर्ग या सीमित समूह तक सीमित नहीं रहा बल्कि यह जन–जन का आंदोलन बन गया। महात्मा गांधी के नेतृत्व में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को एक नई दिशा, नई पद्धति और व्यापक सामाजिक आधार मिला। गांधीजी ने सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह के सिद्धांतों को अपनाकर राष्ट्रवाद को नैतिक शक्ति से जोड़ दिया जिससे आंदोलन को एक अद्वितीय वैश्विक पहचान प्राप्त हुई।

1919 का रोलेट एक्ट और जलियांवाला बाग हत्याकांड इस युग के राष्ट्रवाद की पृष्ठभूमि तैयार करने वाली घटनाएँ थीं जिन्होंने भारतीयों के मन में ब्रिटिश शासन के प्रति गहरा आक्रोश उत्पन्न किया। इसी संदर्भ में गांधीजी ने असहयोग आंदोलन (1920–1922) का आह्वान किया जिसमें लोगों से

© 2020 by The Author(s). ISSN: 1307-1637 International journal of economic perspectives is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.
Submitted: 27 Aug 2020, Revised: 09 Sep 2020, Accepted: 12 Oct 2020, Published; 30 Dec 2020

How to Cite:
(Oct 2020). भारतीय राष्ट्रवाद का विकास : 1857 से 1947 तक
***International Journal of Economic Perspectives*,14(1), 345-352**
Retrieved from https://ijeponline.com/index.php/journal/article
सरकारी संस्थानों, विदेशी वस्त्रों और ब्रिटिश उपाधियों का बहिष्कार करने का आह्वान किया गया। इस आंदोलन में छात्रों, वकीलों, किसानों, मजदूरों और महिलाओं की सक्रिय भागीदारी ने राष्ट्रवाद को व्यापक जनाधार प्रदान किया। यह पहली बार था जब राष्ट्रवाद गाँव–गाँव तक पहुँचा और आम जनता ने स्वतंत्रता संग्राम को अपना व्यक्तिगत संघर्ष मानना शुरू किया।

इसके बाद सविनय अवज्ञा आंदोलन (1930–1934) ने राष्ट्रवादी संघर्ष को और अधिक सशक्त बनाया। गांधीजी द्वारा दांडी यात्रा के माध्यम से नमक कानून का उल्लंघन एक प्रतीकात्मक किन्तु अत्यंत प्रभावशाली कदम था जिसने ब्रिटिश शासन की वैधता को चुनौती दी। इस आंदोलन में भी व्यापक जनसहभागिता देखने को मिली और इसने भारतीयों में आत्मविश्वास तथा स्वराज्य की भावना को मजबूत किया।

1942 का भारत छोड़ो आंदोलन इस युग का अंतिम और सबसे उग्र जनांदोलन था, जिसमें 'करो या मरो' का नारा दिया गया। इस आंदोलन ने ब्रिटिश शासन की जड़ों को हिला दिया और यह स्पष्ट कर दिया कि अब भारत पर विदेशी शासन लंबे समय तक टिक नहीं सकता। यद्यपि इस आंदोलन को ब्रिटिश सरकार ने कठोर दमन के माध्यम से दबाने का प्रयास किया फिर भी यह राष्ट्रवाद की चरम अभिव्यक्ति का प्रतीक बन गया।

गांधी युग में राष्ट्रवाद की एक महत्वपूर्ण विशेषता इसकी समावेशिता और बहुआयामी प्रकृति थी। इस काल में किसान, मजदूर, महिलाएँ, विद्यार्थी और विभिन्न सामाजिक वर्ग बड़ी संख्या में आंदोलन से जुड़े। इसके साथ ही, गांधीजी ने राष्ट्रवाद को केवल राजनीतिक स्वतंत्रता तक सीमित नहीं रखा बल्कि इसे सामाजिक सुधारों–जैसे छुआछूत उन्मूलन, ग्राम स्वराज, खादी और स्वदेशी से भी जोड़ा। इस प्रकार राष्ट्रवाद एक समग्र सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बन गया। हालाँकि इस काल में कुछ चुनौतियाँ भी सामने आईं। सांप्रदायिकता का उदय, हिन्दू–मुस्लिम मतभेद और ऑल इण्डिया मुस्लिम लीग की अलगाववादी राजनीति ने राष्ट्रवादी आंदोलन को प्रभावित किया। इन परिस्थितियों ने अंततः 1947 में भारत के विभाजन का मार्ग प्रशस्त किया, जो राष्ट्रवाद के इतिहास का एक दुःखद पक्ष रहा।

अतः 1919 से 1947 तक का गांधी युग भारतीय राष्ट्रवाद के विकास का सबसे महत्वपूर्ण और निर्णायक चरण था। इस काल में राष्ट्रवाद ने जन–आंदोलन का रूप धारण किया जिसमें नैतिकता, अहिंसा और जनसहभागिता की प्रमुख भूमिका रही। इसी व्यापक और संगठित राष्ट्रवादी संघर्ष के परिणामस्वरूप 15 अगस्त 1947 को भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई। यह युग न केवल स्वतंत्रता का प्रतीक है बल्कि आधुनिक भारत के लोकतांत्रिक और समावेशी स्वरूप की आधारशिला भी है।

अन्य राष्ट्रवादी धाराएँ

भारतीय राष्ट्रवाद का विकास एक एकरेखीय या एकरूप प्रक्रिया नहीं था बल्कि यह विभिन्न विचारधाराओं, आंदोलनों और सामाजिक समूहों के संयुक्त प्रयासों का परिणाम था। जहाँ एक ओर मुख्यधारा का राष्ट्रवादी आंदोलन महात्मा गांधी के नेतृत्व में अहिंसा और सत्याग्रह के मार्ग पर आगे बढ़ रहा था वहीं दूसरी ओर कई अन्य राष्ट्रवादी धाराएँ भी सक्रिय थीं जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम को बहुआयामी स्वरूप प्रदान किया। इन धाराओं में क्रांतिकारी आंदोलन, समाजवादी एवं वामपंथी विचारधारा, किसान–मजदूर आंदोलन तथा महिलाओं की भागीदारी प्रमुख रूप से शामिल हैं।

क्रांतिकारी राष्ट्रवाद इस काल की एक महत्वपूर्ण धारा थी जिसने सशस्त्र संघर्ष के माध्यम से अंग्रेजी शासन को चुनौती देने का प्रयास किया। इस धारा के अंतर्गत भगत सिंह, चन्द्र शेखर आजाद, रामप्रसाद बिस्मिल और अशफाक उल्ला खाँ जैसे क्रांतिकारियों ने अपने प्राणों की आहुति दी। इन क्रांतिकारियों का उद्देश्य केवल ब्रिटिश शासन को समाप्त करना ही नहीं था बल्कि एक न्यायपूर्ण और समानतापूर्ण समाज की स्थापना करना भी था। उनके साहस, त्याग और बलिदान ने युवाओं में राष्ट्रवादी चेतना को अत्यंत प्रबल किया और स्वतंत्रता संग्राम को प्रेरणादायक ऊर्जा प्रदान की।

इसके साथ ही समाजवादी और वामपंथी विचारधारा ने भी भारतीय राष्ट्रवाद को एक नई दिशा दी। बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में समाजवादी विचारों का प्रभाव बढ़ा जिसमें आर्थिक समानता, सामाजिक न्याय और श्रमिक अधिकारों पर बल दिया गया। इस धारा से जुड़े नेताओं ने यह स्पष्ट किया कि केवल राजनीतिक स्वतंत्रता पर्याप्त नहीं है बल्कि सामाजिक और आर्थिक समानता भी आवश्यक है। इस विचारधारा ने राष्ट्रवाद को एक व्यापक सामाजिक परिवर्तन के आंदोलन के रूप में प्रस्तुत किया।

किसान और मजदूर आंदोलन भी राष्ट्रवाद की एक महत्वपूर्ण धारा के रूप में उभरे।

© 2020 by The Author(s). ISSN: 1307-1637 International journal of economic perspectives is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.
Submitted: 27 Aug 2020, Revised: 09 Sep 2020, Accepted: 12 Oct 2020, Published; 30 Dec 2020

How to Cite:
(Oct 2020). भारतीय राष्ट्रवाद का विकास : 1857 से 1947 तक
***International Journal of Economic Perspectives*,14(1), 345-352**
Retrieved from https://ijeponline.com/index.php/journal/article
किसानों ने उच्च करों, जमींदारी शोषण और आर्थिक कठिनाइयों के विरुद्ध संगठित होकर आंदोलन किए, जबकि मजदूरों ने अपने अधिकारों और बेहतर कार्य परिस्थितियों के लिए संघर्ष किया। इन आंदोलनों ने राष्ट्रवाद को जमीनी स्तर तक पहुँचाया और यह सुनिश्चित किया कि स्वतंत्रता संग्राम केवल अभिजात वर्ग का आंदोलन न रहकर आम जनता का संघर्ष बने।

महिलाओं की भागीदारी भी इस काल में उल्लेखनीय रही। सरोजिनी नायडू, अरुणा आसफ अली, कस्तूरबा गांधी जैसी महिलाओं ने न केवल आंदोलन में सक्रिय भाग लिया, बल्कि नेतृत्व की भूमिका भी निभाई। महिलाओं की इस भागीदारी ने राष्ट्रवाद को अधिक समावेशी और व्यापक बनाया तथा भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति को भी सशक्त किया।

अतः यह स्पष्ट होता है कि भारतीय राष्ट्रवाद का विकास विभिन्न धाराओं के समन्वय से हुआ। इन सभी धाराओं ने मिलकर स्वतंत्रता संग्राम को एक व्यापक, गतिशील और बहुआयामी आंदोलन के रूप में विकसित किया। यही विविधता भारतीय राष्ट्रवाद की सबसे बड़ी विशेषता थी, जिसने इसे मजबूत, समावेशी और प्रभावशाली बनाया।

राष्ट्रवाद और सांप्रदायिकता

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दौरान राष्ट्रवाद और सांप्रदायिकता दो समानांतर प्रवृत्तियों के रूप में विकसित हुईं जिनका भारतीय समाज और राजनीति पर गहरा प्रभाव पड़ा। जहाँ राष्ट्रवाद का मूल उद्देश्य भारतीयों को एकजुट कर विदेशी शासन से मुक्ति प्राप्त करना था वहीं सांप्रदायिकता ने धर्म के आधार पर समाज को विभाजित करने का कार्य किया। इस प्रकार, ये दोनों प्रवृत्तियाँ एक–दूसरे के पूरक न होकर कई बार परस्पर विरोधी सिद्ध हुईं। राष्ट्रवाद ने एकता, समावेश और साझा पहचान पर बल दिया जबकि सांप्रदायिकता ने विभाजन, अलगाव और संकीर्ण पहचान को प्रोत्साहित किया।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध और बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में राष्ट्रवादी आंदोलन के विस्तार के साथ–साथ सांप्रदायिकता की भावना भी धीरे–धीरे उभरने लगी। ब्रिटिश शासन की 'फूट डालो और राज करो' की नीति ने इस प्रक्रिया को और अधिक बल दिया। अंग्रेजों ने विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच मतभेदों को बढ़ावा देकर अपने शासन को सुदृढ़ करने का प्रयास किया। इसी क्रम में 1906 में ऑल इण्डिया मुस्लिम लीग की स्थापना हुई जिसका उद्देश्य मुसलमानों के राजनीतिक अधिकारों की रक्षा करना था, किंतु धीरे–धीरे यह अलगाववादी राजनीति की ओर अग्रसर हो गई। इसके अतिरिक्त, 1909 के मॉर्ले–मिंटो सुधारों के तहत पृथक निर्वाचन प्रणाली की व्यवस्था ने सांप्रदायिक विभाजन को संस्थागत रूप प्रदान किया।

हालाँकि प्रारंभिक चरण में राष्ट्रवादी नेताओं ने हिन्दू–मुस्लिम एकता को बनाए रखने का भरसक प्रयास किया। 1916 का लखनऊ समझौता इसका एक महत्वपूर्ण उदाहरण है, जिसमें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच सहयोग स्थापित हुआ। महात्मा गांधी ने भी खिलाफत आंदोलन (1919–1924) के माध्यम से हिन्दू–मुस्लिम एकता को सुदृढ़ करने का प्रयास किया। इस काल में राष्ट्रवाद का स्वरूप समावेशी और बहुलतावादी था जिसमें सभी धर्मों और समुदायों के लोगों को समान रूप से स्थान देने की कोशिश की गई।

किन्तु 1930 के दशक के बाद परिस्थितियाँ बदलने लगीं। सांप्रदायिक संगठनों और नेताओं ने धार्मिक पहचान को राजनीतिक मुद्दा बना दिया। मुहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग ने 'दो–राष्ट्र सिद्धांत' को प्रमुखता दी जिसके अनुसार हिन्दू और मुसलमान दो अलग–अलग राष्ट्र हैं। इस विचारधारा ने भारतीय राष्ट्रवाद की एकता को गंभीर चुनौती दी। दूसरी ओर, कुछ हिन्दू संगठनों द्वारा भी सांप्रदायिक दृष्टिकोण अपनाने से समाज में विभाजन और गहरा हो गया।

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान और उसके पश्चात सांप्रदायिक तनाव अत्यधिक बढ़ गया जिसके परिणामस्वरूप देश के विभिन्न भागों में दंगे होने लगे। अंततः 1947 में भारत का विभाजन हुआ, जो राष्ट्रवाद और सांप्रदायिकता के द्वंद्व का सबसे दुखद परिणाम था। विभाजन के साथ ही लाखों लोगों को विस्थापन, हिंसा और असुरक्षा का सामना करना पड़ा, जिसने भारतीय इतिहास पर एक अमिट छाप छोड़ी।

अतः यह स्पष्ट होता है कि भारतीय राष्ट्रवाद एक समावेशी और एकीकृत शक्ति के रूप में विकसित हुआ जबकि सांप्रदायिकता ने उसे कमजोर करने का कार्य किया। राष्ट्रवाद और सांप्रदायिकता के इस अंतर्संबंध को समझना भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास को समझने के लिए अत्यंत आवश्यक

© 2020 by The Author(s). ISSN: 1307-1637 International journal of economic perspectives is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.
Submitted: 27 Aug 2020, Revised: 09 Sep 2020, Accepted: 12 Oct 2020, Published; 30 Dec 2020

How to Cite:
(Oct 2020). भारतीय राष्ट्रवाद का विकास : 1857 से 1947 तक
***International Journal of Economic Perspectives*,*14*(1), 345-352**
Retrieved from https://ijeponline.com/index.php/journal/article
है। यह भी महत्वपूर्ण है कि आधुनिक भारत में राष्ट्रवाद को समावेशी, धर्मनिरपेक्ष और एकता–आधारित बनाए रखने के लिए सांप्रदायिक प्रवृत्तियों से सतर्क रहना आवश्यक है।

स्वतंत्रता और राष्ट्रवाद का परिणाम

भारतीय राष्ट्रवाद की दीर्घकालीन और संघर्षपूर्ण यात्रा का अंतिम एवं सबसे महत्वपूर्ण परिणाम 15 अगस्त 1947 को भारत की स्वतंत्रता के रूप में सामने आया। यह स्वतंत्रता केवल राजनीतिक सत्ता के हस्तांतरण तक सीमित नहीं थी बल्कि यह भारतीय जनता की सामूहिक चेतना, त्याग, संघर्ष और एकता की विजय का प्रतीक थी। लगभग दो शताब्दियों तक चले औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध निरंतर संघर्ष, जिसमें विभिन्न वर्गों– किसान, मजदूर, विद्यार्थी, महिलाएँ, बुद्धिजीवी और क्रांतिकारी की सक्रिय भागीदारी रही, अंततः एक ऐसे राष्ट्र के निर्माण में परिणत हुआ, जो अपने भविष्य का निर्धारण स्वयं करने में सक्षम था। इस प्रकार भारतीय राष्ट्रवाद ने न केवल स्वतंत्रता प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त किया, बल्कि राष्ट्रीय आत्मसम्मान और स्वाभिमान की भावना को भी पुनर्जीवित किया।

स्वतंत्रता के साथ ही भारतीय राष्ट्रवाद का एक महत्वपूर्ण परिणाम आधुनिक भारतीय राष्ट्र–राज्य की स्थापना के रूप में सामने आया। स्वतंत्र भारत ने एक लोकतांत्रिक, गणतांत्रिक और धर्मनिरपेक्ष व्यवस्था को अपनाया जिसमें सभी नागरिकों को समान अधिकार और अवसर प्रदान किए गए। संविधान के माध्यम से सामाजिक न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व जैसे मूल्यों को स्थापित किया गया जो राष्ट्रवाद के आदर्शों का ही विस्तार थे। इस संदर्भ में महात्मा गांधी के नैतिक सिद्धांतों और समावेशी दृष्टिकोण का भी अप्रत्यक्ष प्रभाव देखा जा सकता है जिसने राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया को मानवीय और मूल्य–आधारित दिशा प्रदान की।

हालाँकि, स्वतंत्रता के साथ कुछ गंभीर चुनौतियाँ भी सामने आईं, जिनमें सबसे प्रमुख भारत का विभाजन था। 1947 में भारत और पाकिस्तान के रूप में दो स्वतंत्र राष्ट्रों का निर्माण हुआ, जो सांप्रदायिक तनाव और अलगाववादी राजनीति का परिणाम था। इस विभाजन ने लाखों लोगों को विस्थापन, हिंसा और सामाजिक अस्थिरता का सामना करने के लिए मजबूर किया। इस प्रकार, जहाँ एक ओर स्वतंत्रता राष्ट्रवाद की सफलता का प्रतीक थी वहीं विभाजन उसकी सीमाओं और अंतर्विरोधों को भी उजागर करता है।

इसके अतिरिक्त, राष्ट्रवाद के परिणामस्वरूप भारतीय समाज में राजनीतिक जागरूकता और नागरिक भागीदारी में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। लोगों में अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति चेतना विकसित हुई, जिससे लोकतांत्रिक संस्थाओं को मजबूती मिली। साथ ही, राष्ट्रवाद ने सामाजिक सुधारों को भी गति प्रदान की, जैसे जातीय भेदभाव के विरुद्ध संघर्ष, महिलाओं की स्थिति में सुधार और शिक्षा का प्रसार। इस प्रकार राष्ट्रवाद केवल स्वतंत्रता तक सीमित न रहकर एक व्यापक सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बना।

आर्थिक दृष्टि से भी राष्ट्रवाद ने आत्मनिर्भरता और स्वदेशी के सिद्धांतों को बढ़ावा दिया जिसने स्वतंत्र भारत की नीतियों को प्रभावित किया। योजनाबद्ध विकास, औद्योगिकीकरण और कृषि सुधारों के माध्यम से देश को आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास किया गया। हालांकि प्रारंभिक वर्षों में कई आर्थिक और प्रशासनिक चुनौतियाँ भी सामने आईं, फिर भी राष्ट्रवाद की भावना ने इन चुनौतियों का सामना करने के लिए प्रेरणा प्रदान की।

अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय राष्ट्रवाद का परिणाम केवल स्वतंत्रता प्राप्ति तक सीमित नहीं था बल्कि यह एक नए राष्ट्र के निर्माण, लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना और सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन की प्रक्रिया का आधार बना। यह राष्ट्रवाद ही था, जिसने भारत को एक संगठित, समावेशी और प्रगतिशील राष्ट्र के रूप में विकसित होने की दिशा में अग्रसर किया।

निष्कर्ष

"भारतीय राष्ट्रवाद का विकास : 1857 से 1947 तक" का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम कोई एक घटना या एक विचारधारा का परिणाम नहीं था बल्कि यह एक दीर्घकालीन, बहुआयामी और क्रमिक प्रक्रिया थी जिसमें विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक शक्तियों का समन्वय देखने को मिलता है। 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से प्रारंभ हुई राष्ट्रवादी चेतना ने धीरे–धीरे एक संगठित और व्यापक आंदोलन का रूप ग्रहण किया। प्रारंभिक राष्ट्रवाद के

© 2020 by The Author(s). ISSN: 1307-1637 International journal of economic perspectives is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.
Submitted: 27 Aug 2020, Revised: 09 Sep 2020, Accepted: 12 Oct 2020, Published; 30 Dec 2020

How to Cite:
(Oct 2020). भारतीय राष्ट्रवाद का विकास : 1857 से 1947 तक
***International Journal of Economic Perspectives*,14(1), 345-352**
Retrieved from https://ijeponline.com/index.php/journal/article

उदारवादी चरण ने भारतीयों को राजनीतिक रूप से जागरूक किया और उन्हें संगठित होने की दिशा प्रदान की जबकि उग्र राष्ट्रवाद और स्वदेशी आंदोलन ने इस चेतना को संघर्षशील और आत्मनिर्भर स्वरूप प्रदान किया।

बीसवीं शताब्दी में महात्मा गांधी के नेतृत्व में राष्ट्रवाद ने अपने चरम को प्राप्त किया, जब यह आंदोलन एक जनांदोलन के रूप में विकसित हुआ। इस काल में राष्ट्रवाद केवल राजनीतिक स्वतंत्रता तक सीमित नहीं रहा बल्कि यह सामाजिक सुधार, नैतिक मूल्यों और जनसहभागिता से भी जुड़ गया। किसान, मजदूर, महिलाएँ और युवा सभी वर्गों की सक्रिय भागीदारी ने राष्ट्रवाद को एक समावेशी और व्यापक स्वरूप प्रदान किया। साथ ही, क्रांतिकारी, समाजवादी और अन्य राष्ट्रवादी धाराओं ने इस आंदोलन को बहुआयामी बनाया और स्वतंत्रता संग्राम को नई ऊर्जा और दिशा दी।

हालाँकि राष्ट्रवाद की इस प्रक्रिया में कुछ अंतर्विरोध और चुनौतियाँ भी थीं जिनमें सांप्रदायिकता का उदय सबसे महत्वपूर्ण था। ऑल इण्डिया मुस्लिम लीग जैसी राजनीतिक शक्तियों की अलगाववादी प्रवृत्तियों और ब्रिटिश शासन की विभाजनकारी नीतियों ने भारतीय समाज में मतभेद उत्पन्न किए जिसका परिणाम 1947 के विभाजन के रूप में सामने आया। यह घटना राष्ट्रवाद की सीमाओं और उसके भीतर निहित जटिलताओं को भी उजागर करती है।

इसके बावजूद, भारतीय राष्ट्रवाद की सबसे बड़ी उपलब्धि भारत की स्वतंत्रता और एक लोकतांत्रिक, धर्मनिरपेक्ष तथा समावेशी राष्ट्र–राज्य की स्थापना है। राष्ट्रवाद ने भारतीयों में आत्मसम्मान, एकता और सामूहिक पहचान की भावना को विकसित किया जिसने आधुनिक भारत के निर्माण की आधारशिला रखी। यह केवल अतीत का विषय नहीं है बल्कि वर्तमान में भी राष्ट्रवाद की भावना भारत की सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक संरचना को दिशा प्रदान करती है।

अतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय राष्ट्रवाद एक जीवंत, गतिशील और बहुआयामी प्रक्रिया रही है जिसने न केवल स्वतंत्रता प्राप्ति में निर्णायक भूमिका निभाई बल्कि एक सशक्त, संगठित और प्रगतिशील भारत के निर्माण की नींव भी रखी।

संदर्भ

1. अग्रवाल, आर. सी. भारतीय इतिहास का सर्वेक्षण. नई दिल्ली : एस. चंद एंड कंपनी, 2009।
2. बिपन चंद्र. आधुनिक भारत का इतिहास. नई दिल्ली : ओरिएंट ब्लैकस्वान, 2016।
3. बिपन चंद्र, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी, के. एन. पनिक्कर. भारत का स्वतंत्रता संग्राम. नई दिल्ली : हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, 2005।
4. ग्रोवर, बी. एल. एवं यशपाल. आधुनिक भारत का इतिहास. नई दिल्ली : एस. चंद एंड कंपनी, 2014।
5. महाजन, वी. डी. आधुनिक भारत का इतिहास. नई दिल्ली : एस. चंद एंड कंपनी, 2013।
6. सुमित सरकार. आधुनिक भारत (1885–1947). नई दिल्ली : मैकमिलन इंडिया, 2011।
7. दत्त, आर. सी. भारत का आर्थिक इतिहास. दिल्ली : प्रकाशन विभाग, 2001।
8. शर्मा, रामविलास. भारतीय राष्ट्रवाद और हिंदी साहित्य. दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2010।

© 2020 by The Author(s). ISSN: 1307-1637 International journal of economic perspectives is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.
Submitted: 27 Aug 2020, Revised: 09 Sep 2020, Accepted: 12 Oct 2020, Published; 30 Dec 2020